इकाई 24 नगरीय संस्कृति और समाज*

संरचना

24.1 प्रस्तावना

24.2 दरबारी संस्कृति

24.3 सामाजिक संरचना

24.4 मध्यम वर्ग

24.5 गुलाम और घरेलू सेवक-सेविकाएं

24.6 पारिवारिक और लैंगिक संबंध

24.7 नागरिक समाज

24.8 शहर और अंतर-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

24.9 जीवंत नगर और साहित्यिक संस्कृति

24.10 सारांश

24.11 अभ्यास

24.12 संदर्भ ग्रंथ

24.1 प्रस्तावना

लेविस मम्फोर्ड (1961: 570) के अनुसार शहर वह स्थान है, जहाँ 'ऊर्जा संस्कृति में परिवर्तित हो जाती है'। यह कथन स्पष्ट रूप से शहरों की नियत 'सांस्कृतिक' भूमिका, शहरी जीवन की जीवंतता, जिसने संस्कृति को प्रभावित कर 'सभ्यता' का निर्माण किया, को स्पष्ट करता है। शहरों के हलचल भरे जीवन का अध्ययन इसी पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए। लेकिन, मध्यकालीन समाज का दायरा इतना अधिक विस्तृत है कि सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन करना बहुत मुश्किल है। यहां आपको व्यापक रुझानों की झलक प्रदान करने का प्रयास किया गया है। कुछ विषय जो सामाजिक अवलोकन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं, फिर भी उनको हम वर्तमान इकाई में सम्मिलित नहीं कर पा रहे हैं, जैसे अपराध और अपराधिकता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, जन्म, प्रदूषण का विचार, बीमारियां और समाज की पर्यावरण संबंधी चिंताएं।

24.2 दरबारी संस्कृति

अखलाक

मुगलों की दरबारी संस्कृति की अवधारणा 'प्रतिष्ठा' थी, न कि संपत्ति। जहांगीर के अमीर मुहम्मद बाकिर का स्पष्ट रूप से मानना है कि 'संपत्ति का नुकसान अधिक चिंता का विषय नहीं है' (मुखिया, 2004: 72)। उनके प्रमुख आदर्श उच्च सामाजिक पद, प्रतिष्ठा, तलवार, और उच्च कुल में जन्म थे। 'दानशीलता' और 'उदारता' की संस्कृति

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विष्वविद्यालय, नई दिल्ली.

सर्वव्यापी थी। अकबर के अमीर अब्दुर रहीम खान-ए खाना और अबुल फजल के भाई फैजी दोनों ही संपत्ति को 'तिरस्कार' की नजरों से देखते थे। जब बाबर ने आगरा के अधिग्रहित खजाने से काबुल में हर व्यक्ति को एक शाहरुखी वितरित की थी तो बाबर को कलंदर (वैरागी) नाम दिया गया। संपत्ति के लिए झगड़ा न के बराबर हुआ करता था, जबकि 'मान मर्यादा' और 'प्रतिष्ठा' के लिए अक्सर लोग मरने-मारने पर उतारू हो जाते थे। मध्यकाल के दौरान *अखलाक* साहित्य (शिष्टाचार पर साहित्य) के उद्‌भव में तेजी आई। मुखिया (2004: 74-75) का तर्क है कि, 'सभी अच्छे नाट्यमंच की तरह, मुगल दरबार भी एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का सपना देखता था जिसमें वह अपने आपको जनता से दूरी पर रखकर अपनी प्रजा के लिए एक आदर्श की भूमिका अदा कर सके। चूंकि राज्य, पदानुक्रम में समाज की कई परतों के शीर्ष पर होता था, इसलिए दरबार की हैसियत सामाजिक व्यवस्था के लिए एक आदर्श थी और शिष्टाचार का सावधानीपूर्वक अवलोकन इसके संरक्षण की कुंजी थी'। 13वीं शताब्दी में संभवतः सबसे पहले लिखे गए *अखलाक* साहित्यों में से एक, *अखलाक-ए नॉसिरी* में नासिर अल-दीन तूसी ने जीवन की प्रमुख दिनचर्याओं जैसे भोजन करने, सोने, बातचीत करने के सलीकों के बारे में बताया है। इसके महत्व का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसे अकबर को प्रतिदिन पढ़कर सुनाया जाता था। *अखलाक* साहित्य में मुख्य रूप से अभिजात्यों के रहने-सहने के सलीकों, शिष्टाचार के बारे में लिखा गया है, ताकि दरबार के अंदर और बाहर सामान्य प्रजा के ऊपर 'दरबारी' संस्कृति की श्रेष्ठता सिद्ध हो सके। इस प्रकार अभिजात्य वर्ग के हाव-भाव में हमेशा दरबारी संस्कृति की झलक दिखाई देती थी। दिलचस्प यह है कि सार्वजनिक या निजी स्थानों पर शिष्टाचार में कोई अंतर नहीं था। ये शिष्टाचार पदानुक्रम और विशेषाधिकारों के सिद्धांत पर आधारित थे, जो *आइन* में अबुल फजल की टिप्पणी में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है:

> बुद्धिमानों को यह सलाह दी जाती है कि दूरदर्शी राजकुमारों को अपनी सेवा के लिए हर किसी निम्न व्यक्ति को नियुक्त नहीं करना चाहिए; इस प्रकार नियुक्त किए गए, प्रत्येक व्यक्ति को रोजाना अपने पास नहीं बुलाना चाहिए; जिनको भी यह अवसर दिया गया है उनमें से प्रत्येक को अपने साथ बातचीत की निकटता का हक नहीं देना चाहिए; सभी को सम्बोधित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए... सभी को महान् सभा में नहीं बुलाया जाना चाहिए... गुप्त सभा में आने की अनुमति सभी को नहीं दी जानी चाहिए... सलाहकारों की विशेष परिषद में सभी स्थान प्राप्त नहीं करते हैं (मुखिया में उद्धृत, 2004: 76)।

औरंगजेब का मानना था कि पुरुषों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे साधारण और सफेद कपड़े पहनें, जबकि सजावटी कपड़े पहनना महिलाओं का प्राधिकार है। मुगल और मुगल दरबार के शिष्टाचार और समारोहों की जीवन शैली अभिजात्यों द्वारा अपनाई जाती थी। उच्च अमीर अक्सर अपने दासों को *कुर्निश* बजाने के लिए मजबूर करते थे। विनम्रता/शिष्टाचार को निरूपित करने के लिए *मिर्जाई* शब्द के प्रयोग का प्रचलन प्रारंभ हुआ – इसे अक्सर सुसंस्कृत और सभ्य पुरुषों के लिए इस्तेमाल किया जाता था। सत्रहवीं सदी की शुरुआत में मिर्जा कामरान ने *मिर्जा नामा* की रचना की जिसमें *मिर्जाई* के उपयुक्त शिष्टाचार, संस्कृति, तौर-तरीके और नियमों का संकलन था। *मिर्जा नामा* के अनुसार, एक शिक्षित व्यक्ति को अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए और शेख सादी का *गुलिस्तां*, हाफिज का *बोस्तान* और फिरदौसी का *शाहनामा* पढ़ा होना चाहिए। *मिर्जा नामा* (ब्लेक, 1993: 138 में उद्धृत) के अनुसार, 'समाज में मिर्जा को बातचीत के दौरान किसी भी प्रकार की गलती से बचने की कोशिश करनी चाहिए क्योंकि बातचीत के दौरान की गई ऐसी गलती एक मिर्जा के लिए एक बहुत बड़ी गलती मानी जाएगी'। इतिमादुद्दौला के पोते मिर्जा और नूरजहां बेगम के भाई के पुत्र अबू सईद के शिष्टाचार के बारे में बताते हुए शाहनवाज खान उनकी तथाकथित मिर्जाई के बारे में बताते हैं कि, 'वह अपनी सुंदरता और राजशाही के लिए जाने जाते थे, और वस्त्र और भोजन दोनों में उनकी रुचि आला दर्जे की थी... उनके इतने शौकीन और

बुलंद विचार थे कि कभी-कभी वह दरबार में जाने के लिए अपनी पगड़ी को व्यवस्थित कर रहे होते थे कि खबर आती कि दरबार समाप्त हो गया, और कभी-कभी जब वह अपनी पगड़ी की व्यवस्था से संतुष्ट नहीं होते थे तो वे घुड़सवारी के लिए भी नहीं जाते थे'। हालांकि अठारहवीं सदी तक आते-आते शासक वर्ग इस प्रकार के कड़े शिष्टाचार और नियमों से मुक्त हो चुका था। इस प्रकार *आदाब* (शिष्टाचार) मुगल दरबारी संस्कृति की कुंजी थी।

अशराफ

मुहम्मद बिन तुगलक के काल के 14 वीं शताब्दी के इतिहासकार, जियाउद्दीन बर्नी, अपनी *फतवा-ए जहांदारी* में स्पष्ट रूप से *अशराफ* को 'सद्गुण संपन्न' और *अजलाफ* को 'हेय' कहते हैं। *अशराफ* को बर्नी द्वारा 'मुहम्मद के पुत्र' की संज्ञा दी गई है, जिन्हें उच्च कुल का माना जाता है; जबकि *अजलाफ* को 'निम्न कुल में उत्पन्न' माना जाता था। इस प्रकार *अशराफ* जन्म से ही श्रेष्ठ थे। यहां, मेरे द्वारा *अशराफ* और *अजलाफ* शब्दों का प्रयोग बेहद सामान्य अर्थों में किया गया है: *अशराफ*, कुलीन जनों के लिए (इसमें सिर्फ शाही वंश के मुस्लिम अभिजात्य वर्ग ही शामिल नहीं थे); जबकि *अजलाफ*, शहरी समाज के आम गरीब लोगों के लिए। अपने व्यापक अर्थों में *अशराफ* एक अभिजात्य वर्ग था – भद्र एवं सुसंस्कृत – जिसमें सैनिक, प्रशासक और विद्वान शामिल थे। सत्रहवीं शताब्दी में जब बंगाल, उत्तर भारत में शामिल हुआ तो विशेष रूप से प्रांतीय राजधानी ढाका में एक नए मुस्लिम वर्ग *अशराफ* वर्ग, का अभ्युदय हुआ जिनका मानना था कि वे पश्चिमी इस्लामिक मूल – मशहद, तेहरान, बदख्शान, माजन्दरान गीलान, आदि के वंशज हैं। इसके कारण पुराने *अशराफ* – अफगान – को और भी आगे पूर्व और दक्षिण की ओर विस्थापित कर दिया गया। रिचर्ड ईटन का तर्क है कि 'इस अवधि में *अशराफ* मुस्लिमों और उन ग्रामीणों के बीच सामाजिक दूरी और भी ज्यादा हो गई जो चौदहवीं सदी से मुस्लिम समाज के एक विशिष्ट स्थानीय स्वरूप में धीरे-धीरे घुलते-मिलते जा रहे थे'। बंगाल के इन *अशराफों* की जीवन शैली पर टिप्पणी करते हुए तपन रायचौधरी (1953: 200) ने कहा है कि वे 'बहुत ही धीमे स्वर में, अनुशासित तरीके से संयम और मिठास के साथ बड़े ही आधिकारिक रूप से बोलते थे।'

इन *अशराफों* की आडंबरपूर्ण जीवनशैली में राजशाही की नकल थी। यह कहा जाता है कि अबुल फजल के रसोई घर में हर रोज एक हजार तरह के व्यंजन पकाए जाते थे। बर्नियर (1916: 213) के अनुसार, 'उनकी गृहस्थी में बहुत सारी 'पत्नियां, नौकर, ऊंट और घोड़े होते थे'। अभिजात्यों के महलों के अहाते के अंदर विलासिता के सामानों की कोई कमी नहीं थी। उनके विशाल उद्यान और तालाब थे; महलों में होने वाले समारोहों में संगीत, मदिरा और नृत्य की प्रबलता होती थी (अधिक विवरण के लिए आगामी भाग देखें)। हिंदू अभिजात्य वर्ग भी किसी भी तरह से मुस्लिमों के पहनावे और दरबारी शिष्टाचार को अपनाने में पीछे नहीं था।

24.3 सामाजिक संरचना

मुगल शहरों की एक दिलचस्प विशेषता यह थी कि सामाजिक वर्गों के आधार पर कोई भौतिक अलगाव नहीं था। अमीरों और गरीबों के निवास स्थान भी अलग-अलग नहीं थे, जैसा कि बाद में औपनिवेशिक काल के दौरान श्वेत और अश्वेत निवास स्थान अलग-अलग होने लगे। इसी प्रकार, जाति या धर्म के आधार पर भी कोई भौतिक विभाजन नहीं था; यहां तक कि व्यावसायिक स्थान और आवासीय स्थान भी अलग-अलग नहीं थे। बर्नियर (1916: 246) की टिप्पणी करता है कि:

> इन गलियों में *मनसबदार*, छोटे अमीर, न्यायालय के अधिकारीगण, समृद्ध व्यापारी और अन्य लोगों की बस्तियाँ हैं; इनमें से अधिकतर देखने में संतोषजनक हैं ... इन अलग-अलग मकानों के साथ छोटे मकान भी काफी बड़ी संख्या में हैं ... जिसमें आम सैनिक और बड़ी संख्या में दरबार और सेना में कार्यरत सेवक भी रहते हैं।

लगभग सौ वर्ष बाद, मुहम्मद शाह के शासन काल के दौरान, शाहजहानाबाद का जैसा वर्णन *मुरक्का-ए दिल्ली* में किया गया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न समुदायों के लोग आपस में मिलजुल कर रहते थेः

> हौज-ए काजी के दक्षिण से तुर्कमान गेट तक, सड़क के दोनों ओरः एक तरफ, *हलवाईयों* (मिठाई बनाने वाले) की दुकानें, कूचा बाजार, इमली मोहल्ला और कूचा पति राम, हाफिज फिदा की हवेली, कूचा मुर्गीयान (पक्षी और मुर्गे), रैयतों के निवास (*मकान-ए रिआया*), कश्मीरी पंडितों के घर, दूधाधारी की *हवेली*, लाला गुलाब राय पंडित का घर, पालम के तहसीलदार, माई दास का कूचा, पंज पीरान का थान, शीदी कासिम का कूचा, जो पति राम के कूचे की ओर जाता है। शीदी कासिम के कूचे में गोवर्धन कश्मीरी और मीर खान टुंडा का निवास है, जो गायन और नृत्य में अव्वल दर्जे के हैं, मिर्जा फतउल्ला बेग चेला का घर, मौलवी फतह अली साहिब *जागीरदार* की *हवेली*, अन्य रैयतों (*रिआया*) के घर, नौरंग राय का कुआँ, बनियों (*बक्कालान*) की हवेली है। और कूचे जो शहर की सीमा की ओर हैं, के रास्ते में खटीकों की *रियासत* (संपत्ति) है जो चमड़े का काम करते हैं (*चर्म साजान*), तनसुख राय कागजी का छोटा बगीचा, नवाब मुजफ्फर खान का हौज (तालाब) और रैयतों (*रिआया*) के घर हैं। थान पंज पीरान में लाला बसंती, राम सदासुख पंडित की हवेलियाँ हैं और बाजार सीता राम, जानी खान का कटरा और रैयतों की *रियासत* (संपत्ति) भी देखे जा सकते हैं ... (हसन 2005: 89 से उद्धृत)।

हालांकि, शाहजहानाबाद के कुछ इलाकों *(मोहल्लों)* में विशेष रूप से मोहल्ला चूड़ीगरान, मोहल्ला धोबीवाला, मोहल्ला कश्तीबानान (नाविक) जैसे एक ही शिल्प समूह/जाति के लोग रहते थे। बनारसीदास के ब्योरे से भी यह पता चलता है कि पारिवारिक स्तर पर भी लोग अपने ही समुदायों में रहते थे – अपनी जाति के लोगों या व्यावसायिक मित्रों के साथ।

लेकिन, उनके घर उनके जीवन स्तर के विशाल अंतर को दर्शाते हैं। आम लोगों के घर सामान्यतः मिट्टी के बने थे, जिनकी छतें फूस और बांस की थीं। पेलसर्ट (2009: 61-62) विभिन्न वर्गों के बीच के अंतर और साथ ही सामान्य लोगों की खस्ताहाल जीवन शैली पर टिप्पणी करता हैः

> अमीर काफी समृद्ध और शक्तिशाली हैं और सामान्य जन काफी गरीब – गरीबी इतनी ज्यादा और भयानक है कि लोगों के जीवन स्तर को उनके घरों जो नितांत दरिद्रता और कड़वे संताप से भरे, को देखकर ही स्पष्ट रूप से वर्णित किया जा सकता है ...
>
> उनके घर मिट्टी के बने हैं और छतें फूस की हैं, फर्नीचर थोड़ा है या नहीं है, पानी रखने और खाना पकाने के लिए कुछ मिट्टी के बरतन और दो पलंग को छोड़कर... उनके बिस्तर बहुत ही निम्न स्तर के हैं, केवल एक या शायद दो चादर, जो ओढ़ने और बिछाने दोनों के ही काम आता है; गर्मी के मौसम में तो यह पर्याप्त है, लेकिन ठंड की रातों में इनसे गुजारा करना काफी मुश्किल होता है, इसलिए वे दरवाजों के बाहर उपले जलाकर घर को गर्म रखने की कोशिश करते हैं, क्योंकि घरों में कोई चिमनी नहीं होती है; शहर भर में इस कारण इतना धुआँ होता है कि आँखें जलती हैं और गले में खराश होने लगती है।

थिवनो भी टिप्पणी करता है कि शहरी परिदृश्य का बड़ा हिस्सा अमीरों (उनकी *हवेली* और उद्यानों) के कब्जे में था; जबकि साधारण घर छोटे थे। पटना के संदर्भ में टेवर्नियर

(1977: 100) का अवलोकन भी इससे अलग नहीं है: 'भारत के अधिकांश शहरों के घरों की तुलना में यहाँ के घर बेहतर नहीं हैं, और घरों की छतें लगभग बांस और फूस की हैं'। बर्नियर (1916: 246) का अवलोकन भी कुछ ऐसा ही है, उनका कहना है कि सिर्फ छोटे *अमीरों* और *मनसबदारों* के घर 'ईंट या पत्थर के हैं जबकि बाकी घर मिट्टी और फूस के बने हैं, लेकिन फिर भी ये घर काफी आरामदायक और हवादार होते हैं, ज्यादातर घरों में आंगन और बागीचे भी हैं, ऐसे घर अंदर से काफी लंबे-चौड़े होते हैं और अच्छे फर्नीचर से युक्त हैं। फूस की छतें लंबे, सुंदर और मजबूत केन के डंडों पर आधारित हैं और मिट्टी की दीवारें उच्च कोटि के सफेद चूने से पुती हुई हैं। इन घरों... [इनके साथ बहुत से अन्य घर हैं] के साथ छोटे घर मिश्रित हैं, जो मिट्टी और फूस के बने हुए हैं, इनमें सामान्य सैनिक, काफी संख्या में नौकर और शिविर के साथ चलने वाले, जो दरबार और सेना के पीछे चलते हैं, रहते हैं'। बर्नियर का कहना है कि, 'इन्हीं मिट्टी और फूस के घरों की वजह से मैं दिल्ली को *गांवों के संग्रह* के रूप में प्रस्तुत करता हूं'। उनका मानना है कि इन घरों के कारण ही दिल्ली में मुख्य रूप से गर्मियों में आगजनी की घटनाएँ बराबर होती रहती हैं। 1662 में ही शहर में करीब तीन आगजनी की घटनाओं में तकरीबन साठ हजार ऐसे ही घर जलकर खाक हो गए थे। हालांकि, बड़े *अमीर*, अपने घरों को ठंडा रखने के लिए *खस-खस* की घास का इस्तेमाल करते थे। उनके घरों पर टिप्पणी करते हुए बर्नियर (1916: 249) कहता है, 'हिंदुस्तान की राजधानी में खूबसूरत मकानों की कमी नहीं है'। हालांकि, यूरोपीय यात्रियों ने ईंट और तराशे हुए पत्थरों से बने बेहतर घरों के लिए केवल बनारस की ही प्रशंसा की है।

हालांकि, शहरों में बड़ी संख्या में मजदूर घुमंतू थे। जिस तीव्रता से भारतीय शहरों और कस्बों का निर्माण होता था और जिस तेजी से वहाँ से आबादी का पलायन होता था, उस पर बाबर ने भी हैरानी व्यक्त की है। सूरत में विशाल अस्थायी आबादी थी। थिवनो और करेरी उल्लेख करते हैं कि लाल सागर और ईरान की ओर जाने वाले जहाजों में माल की लदाई के समय (जनवरी से मार्च) सूरत में जहाजों पर माल चढ़ाने और उतारने के लिए मजदूरों की मांग जब बढ़ जाती थी तो उस समय वहाँ मजदूरों की संख्या में काफी वृद्धि हो जाती थी।

शहरों में ठगी का भी माहौल था। बनारसीदास बताता है कि एक सर्राफ ने उन्हें नकली रुपये दे दिए। शहरों में लूट्पाट और चोरी की घटनाएं भी होती थीं, यहां तक कि सबसे सुरक्षित शाहजहानाबाद जैसा शहर भी ऐसी चोरी की वारदातों से मुक्त नहीं था। आनंदराम मुखलिस का कहना है कि शाहजहानाबाद का एक कसाई, खानान, मुहम्मद शाह के काल के दौरान शहर में कई चोरी और सेंधमारी की घटनाओं में शामिल था। इसी प्रकार शहर 'पशुपालक लुटेरों' से भी त्रस्त था जो शहर के आसपास की बस्तियों में रहते थे। नादिर शाह और बाद में अहमद शाह अब्दाली की लूट ने शहर को और भी भेद्य बना दिया (चिनॉय, 2015: 162-164)।

24.4 मध्यम वर्ग

शहरी 'मध्यम वर्ग' की अवधारणा चौदहवीं शताब्दी में यूरोप में सामंती वर्ग के विरोध के रूप में उभरी। मध्यवर्ग को 'अभिजात्य और गुलाम' के बीच विद्यमान एक वर्ग के रूप में परिभाषित किया गया था। इस नए उभरते हुए वर्ग में केवल नए व्यापारी और व्यापारी समुदाय ही नहीं थे बल्कि नए 'पेशेवरों' के वर्ग भी शामिल थे – वकील, चिकित्सक इत्यादि। जब बर्नियर (1916: 252) भारत भ्रमण पर आया तो उसने अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी की कि, 'दिल्ली में कोई *मध्य वर्ग* नहीं है। यहाँ लोग या तो बहुत ही ऊँचे पद पर हैं या फिर बहुत ही गरीबी में जीने को मजबूर हैं'। मोरलैंड (1962: 73-78) का मत है कि अकबर के शासनकाल में क्लर्कों और एकाउंटेंट्स जैसे पेशेवर वर्ग बड़ी संख्या में

थे, लेकिन उनका अस्तित्व राज्य के अस्तित्व से जुड़ा हुआ था और उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था, इस प्रकार ये पूरी तरह से राज्य पर 'आश्रित' थे। इस प्रकार, मोरलैंड (1962: 77-78) ने हालांकि सहमति व्यक्त की कि चिकित्सा, साहित्य, कला और संगीत जैसे कुछ व्यवसाय मौजूद थे, लेकिन 'सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि उनके उत्पादों और सेवाओं के लिए बाजार काफी संकुचित था। शिक्षित मध्यम वर्ग बहुत ही कम था, और चिकित्सक या कलाकार या साहित्यिक व्यक्ति केवल राज दरबार या प्रांतीय गवर्नरों, जो शाही राजदरबार की तर्ज पर ही संगठित थे, के लिए काम करके ही पर्याप्त आय प्राप्त करने की उम्मीद कर सकता था'।

लेकिन, मध्य काल में असंख्यक व्यावसायिक और सेवा वर्ग (व्यापारी, दुकानदार, चिकित्सक, वास्तुकार, शिक्षक, कवि, संगीतकार, विद्वान आदि) मौजूद थे, जिन्हें मध्यम वर्ग के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। व्यापारियों, व्यवसाईयों और वाणिज्यिक वर्गों (*सर्राफ* और *महाजन*) के स्वतंत्र वर्ग मौजूद थे, जो समृद्ध थे और समाज में उनका स्तर उच्च था। चिकित्सा सबसे समृद्ध व्यवसाय था। इक्तिदार आलम खान (1976: 40) मोरलैंड के इस कथन का विरोध करते हैं और कहते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक 'सामंती संरक्षण पर पूरी तरह से निर्भर चिकित्सकों की संख्या नगण्य थी'। उनका तर्क है कि वे बहुत अधिक मांग में थे और शहर के बाजारों में आसानी से उपलब्ध थे (*ताबीनान-ए कूचा-ओ-बाजार*)। *तजकिरा-ए पीर हस्सू तेली* में शाहजहां के शासनकाल के दौरान लाहौर में निजी चिकित्सक के रूप में कार्यरत *हकीम* का उल्लेख मिलता है। दारा शिकोह द्वारा सेवा से निकाल दिए जाने के बाद मानुकी ने स्वयं एक स्वतंत्र और सफल चिकित्सक के रूप में लाहौर में काम किया और काफी धन अर्जित किया। सिर्फ बड़े शहरों में ही नहीं बल्कि सरहिंद, जौनपुर, खैराबाद, बनारस, कलानौर और हिसार जैसे शहरों में भी पेशेवर चिकित्सकों के संदर्भ मिलते हैं जहां पैसे देकर उनकी सेवाएं प्राप्त की जा सकती थीं। बनारसीदास अपने *अर्धकथानक* में वर्णन करता है कि उनके बचपन में जौनपुर के एक चिकित्सक ने एक वर्ष तक उसका इलाज किया था; जब 1616 में उसके पिता बीमार हुए तो बनारस के एक चिकित्सक ने उनका इलाज किया। बालकृष्ण ब्राह्मण उल्लेख करता है कि हिसार में स्थानीय चिकित्सक मनका तबीब की प्रैक्टिस (चिकित्सा कार्य) काफी समृद्ध और प्रसिद्ध थी (खान 1976: 37-39)। हालांकि, अमीरों और *मनसबदारों* के लिए काम करने में अधिक लाभ होता था। शहरों में राज्यों और अमीरों द्वारा चलाए जाने वाले अस्पतालों (*शिफाखानों*) ने भी बड़ी संख्या में चिकित्सकों को रोजगार दिया, ऐसा ही एक *शिफाखाना* जहांगीर द्वारा यात्रियों के लिए स्थापित किया गया था।

व्यावसायिक गतिशीलता

मैक्स वेबर का तर्क है कि पूर्व-औपनिवेशिक भारत में कोई अंतर-शिल्प गतिशीलता मौजूद नहीं थी। अगर कोई शहरी मध्य वर्ग के संदर्भ में यह तर्क देता है तो बेहतर रोजगार और बेहतर अवसरों की तलाश में इन शहरी वर्गों में अक्सर पेशे बदलने के उदाहरण देखे जा सकते हैं। प्रसिद्ध सूफी संत मोहम्मद गौस शत्तारी के पिता व्यापारी थे, जो मांडु में कागज की बिक्री और खरीद का व्यापार करते थे। बनारसीदास के दादा मूलदास हुमायूं के एक अमीर के अधीन मोदी थे। बनारसीदास के पिता, सुलेमान कराराणी के दीवान श्रीमल राय धन्ना के तहत *फोतेदार* के रूप में कार्य करते थे। बाद में उन्होंने आगरा में अपना खुद का व्यवसाय स्थापित किया। इसी प्रकार, अकबर के शासनकाल के प्रसिद्ध कवियों में से एक घुबारी, एक अनाज व्यापारी (*बक्काल*) का पुत्र था; माहिम के पिता तीर बनाने वाले कारीगर (*तीरगर*) थे; कासिम हिंदी हाथी की देखभाल करने वाले (*फीलबान*) का बेटा था; जबकि काजी मुल्तानी खुद एक व्यापारी थे। प्रसिद्ध व्यापारिक घरानों के संस्थापक – रूस्तमजी और सूरत के अब्दुल गफूर

पुजारी वर्ग से थे। अठारहवीं शताब्दी से हमें महाजन, खत्री और बनिया इत्यादि के स्थानीय प्रशासन में रिकॉर्ड की देखभाल करने और मुनीम के रूप में कार्य करने के विवरण मिलते हैं (खान, 1976: 41-42)। *इनशा* लेखकों, एकाउंटेंट और अन्य प्रशासनिक पेशेवर भी अपने पसंद से अपने पेशे बदलते रहते थे या छोड़ देते थे। *तजकिरा-ए पीर हस्सू तेली* के संकलनकर्ता सूरत सिंह के भाई ने पहली बार लाहौर *वाकया निगार* के रूप में नौकरी की; फिर गुजरात में अधिकारी के रूप में कार्य किया; वहां से लौटने के बाद वह बेरोजगार रहे और फिर *परगना* जहांगीरपुर के *आमिल* के रूप में कार्य किया; उसके बाद वे बटाला में खालिसा प्रतिष्ठान में शामिल हो गए; फिर *दीवान* के रूप में भटिंडा में कार्य किया; उसके बाद राय बिहारी मल के *वकील* के रूप में आगरा स्थानांतरित हो गए; इसके बाद एक बार फिर वे वापस लाहौर चले गए और फिर *खान-ए सामान* के रूप में काबुल चले गए; एक बार फिर उन्होंने एक महीने के अंदर नौकरी छोड़ दी, क्योंकि यह काम उन्हें पसंद नहीं आया (खान, 1976: 44)।

भौगोलिक गतिशीलता

यह पेशेवर वर्ग न केवल अपनी इच्छा से व्यवसाय में परिवर्तन करता रहा बल्कि बेहतर अवसरों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भी ये आश्चर्यजनक गतिशीलता के साथ स्थानांतरित होते रहते थे। यातायात के अच्छे साधनों के अभाव के बावजूद व्यापारिक समुदाय एक शहर से दूसरे शहर जाते रहते थे। बनारसीदास अपने *अर्धकथानक* में उल्लेख करता है कि वह खुद जौनपुर से आगरा और फिर खैराबाद गए, फिर खैराबाद से बनारस, जौनपुर और फिर पटना चले गए। पटना से वह फिर से खैराबाद होते हुए आगरा चले गए। आश्चर्यजनक यह है कि वे पांच सूबों – दिल्ली, आगरा, अवध, इलाहाबाद और बिहार में बार-बार आते-जाते रहे लेकिन कभी भी राहजनी या लूट के शिकार नहीं हुए। इसी प्रकार, मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध जगत सेठ, नागौर (राजस्थान) के रहने वाले थे, फिर उनके पूर्वज हीरानंद शाह पटना चले गए और वहां से बाद में मुर्शिदाबाद (खान, 1976: 42)। स्थानांतरण की यह गतिशीलता सिर्फ व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि व्यावसायिक वर्गों के समूहों का एक साथ एक स्थान से दूसरे स्थान स्थानांतरण एक सामान्य बात थी। बनारसीदास फतेहपुर के एक इलाके में रहने वाले ओसवालों के एक विशिष्ट समुदाय का उल्लेख करता है। अभी भी कश्मीरी कटरा नामक एक अलग कटरा, शाहजहानाबाद के किले के दिल्ली गेट के निकट कश्मीरियों को समर्पित है। सूरत में खत्रियों की काफी आबादी है, जो पंजाब से उनके उत्प्रवासन के सूचक हैं।

इक्तिदार आलम खान (1976: 43-44) इस व्यावसायिक और भौगोलिक गतिशीलता के दो प्रमुख कारणों के रूप में प्रशासन केंद्रीय पद्धति की सर्वव्याप्तता के साथ-साथ विशेषज्ञ *इनशा* लेखकों और लेखपालों की अत्यधिक मांग का उल्लेख करते हैं।

24.5 गुलाम और घरेलू सेवक-सेविकाएं

मुगल काल तक आते-आते कुलीन गुलाम सैनिक, जो सल्तनत शासक वर्ग की एक महत्वपूर्ण ताकत थी, पूरी तरह से समाप्त हो चुके थे और 'गुलाम श्रमिक, श्रम बल के एक छोटे से घटक के रूप में परिवर्तित हो गया जो मुख्यतः घरेलू सेवक और 'रखैल' के रूप में सिमट कर रह गया... ' (मूसवी, 2011: 347)। अकबर ने गुलामों के व्यापार को अवैध घोषित किया और युद्ध बंदियों की जबरन दासता पर प्रतिबंध लगाया। 1582 में उन्होंने हजारों ऐसे गुलामों को मुक्त कर दिया। ऐसे ही स्वतंत्र गुलामों का एक वर्ग अकबर के व्यक्तिगत हथियारबंद अंगरक्षक और सहायक के रूप में कार्यरत थे जिन्हें *चेला* कहा जाता था। *चेला*, एक विशिष्ट श्रेणी के सैनिकों के रूप में औरंगजेब के शासनकाल के दौरान भी वजूद में थे। मानुकी ने उन्हें 'दागदार' (branded) लोगों (वे

जवान जो अपने घोड़ों को दाग के लिए लाया करते थे) की संज्ञा दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोलहवीं शताब्दी में तटीय क्षेत्रों में गुलामों का व्यापार बहुत व्यापक था। हम भारतीय बंदरगाहों तक आयातित होने वाले एबीसीनियन और अराकानी गुलामों के बारे में सुनते हैं। सोलहवीं शताब्दी में गोवा गुलामों का एक प्रसिद्ध बाजार था। पुर्तगालियों ने अपने जहाजों पर अफ्रीकी गुलामों को श्रमिकों के रूप में नियुक्त किया था, जो सैनिकों के साथ-साथ घरेलू नौकरों का भी कार्य करते थे। थिवनो पुर्तगालियों के अधीन दमन में पुरुष और महिला दोनों प्रकार के गुलामों का जिक्र करता है। वह उल्लेख करता है कि वे 'सिर्फ अपने स्वामी के लिए काम करते हैं और संतानें पैदा करते हैं'। वे घरेलू नौकर, पालकी धारकों के रूप में कार्यरत थे और/या उनके क्षत्रों (umbrellas) को लेकर चलते थे। ये गुलाम आमतौर पर मोम्बासा, मोजाम्बिक और सोफला के निवासी थे। थिवनो के अनुसार गोवा में प्रत्येक पुर्तगाली के पास 30 से 40 गुलाम होते थे (रे, 1988: 219-220)। हुगली, चटगांव, तामलूक सोलहवीं शताब्दी में गुलामों के प्रमुख बाजारों के रूप में उभरे, विशेष रूप से अराकानी गुलामों का बाजार, जिन्हें बंगाल से लाकर भारतीय बाजारों में बेच दिया जाता था। कंपनियां भी गुलामों के व्यापार में शामिल थीं, पर ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के प्रतिबंध का इस पर गहरा प्रभाव पड़ा जो कि 1623 में डच फैक्टर फान देन ब्रूक की शिकायत से स्पष्ट होता है कि सूरत में दास बहुत महंगे थे क्योंकि मुसलमान इसकी अनुमति नहीं देते थे। लेकिन, मुगल राज्य में अकाल के दौरान गुलामों की खुली बिक्री की अनुमति थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य की नीति में कुछ बदलाव औरंगजेब के काल में अवश्य आया जब उसने दास व्यापार पर लगने वाले कर पर प्रतिबंध हटा दिया।

हालांकि, ये घरेलू दास और 'रखैल' कुलीन घरों में और यहां तक कि छोटे अधिकारियों के घरों में बड़ी संख्या में सेवारत थीं। यूरोपीय यात्री, पेल्सर्ट और बर्नियर असंख्य घरेलू नौकरों की मौजूदगी का उल्लेख करते हैं। फ्रायर (1672-81; मूसवी में उल्लेखित, 2011: 346) टिप्पणी करता है, 'एक [कैवलरी]। सिपाही चाहे कितना भी छोटे पद पर क्यों न हो, उसके पास तीन या चार नौकर जरूर होंगे'। जाफर जट्टल्ली (1710) के अनुसार, गुलाम के रूप में कम से कम एक पुरुष और एक लड़की हर घर का अभिन्न हिस्सा थे।

गुलामों की एक अन्य श्रेणी *ख्वाजासराओं* (हिजड़ों) की थी। आमतौर पर वे महिला प्रतिष्ठानों, *हरम* में पहरेदार के रूप में कार्यरत थे। ये *चेला* समुदाय से भिन्न थे और *ख्वाजा* और *ख्वाजासरा* के रूप में संबोधित किए जाते थे। जहांगीर के *ख्वाजासराओं* में ख्वाजा हिलाल इतना ताकतवर था कि उसने आगरा में एक आलीशान हवेली का निर्माण किया और रूंकता/रूंगटा नामक *कस्बे* की स्थापना की। जहांगीर द्वारा कठोर कार्रवाई का दावा करने के बावजूद बंगाल के सिल्हट और घोराघाट की *सरकारों* से *ख्वाजासराओं* की आपूर्ति की जाती रही।

बेगार को अनैतिक माना जाता था। अकबर (1597) और शाहजहां (1641) ने समय-समय पर इस संदर्भ में घोषणाएं कीं। यह दिलचस्प है कि, जब अकबर ने 1598 में श्रीनगर के नागर में अपने किले का निर्माण कराया तो उसने वहां लिखवाया कि, 'इस निर्माण के लिए किसी भी श्रमिक से बिना मजदूरी के काम नहीं कराया गया और 1,10,00,000 *दाम* (तांबे के सिक्के) श्रमिकों को मजदूरी के भुगतान के लिए शाही खजाने से खर्च किए गए' (मूसवी, 2011: 347)।

24.6 पारिवारिक और लैंगिक संबंध

मध्य काल में मृत्यु दर असाधारण रूप से उच्च थी। बनारसीदास के दो भाइयों की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी और इसी प्रकार उनके आठ बच्चों की मौत भी बचपन में ही हो गई थी। मुहम्मद गौस शत्तारी वर्णन करते हैं कि, उनके भाई की मौत भी बाल्यकाल में ही हो गई थी। 'बाल श्रम' सामान्य चलन था। सीकरी के निर्माण को चित्रित करने वाली पेंटिंग में तीन छोटे बच्चों को ईंट और गारा ले जाते हुए दर्शाया गया है। थिवनो और टेवर्नियर के अनुसार छोटे लड़कों को आगरा में टंकाई के काम में लगाया जाता था, वे हीरे के खनन में, पानी लाने और मिट्टी ले जाने के लिए और हीरा पॉलिशिंग में भी कार्यरत किए जाते थे।

मध्य काल के *अखलाक* साहित्य का केंद्र 'पुरुष' प्रधान था। महिलाओं को *अखलाक* के आदर्शों/मानदंडों से दूर रखा गया। यह स्पष्ट करता है कि अभिजात्यों के बेटों के आदर्श क्या होने चाहिए, महिलाओं को इन आदर्शों में शामिल नहीं किया गया है। मध्य काल में पारिवारिक संबंधों को समकालीन स्थितियों द्वारा नियंत्रित किया जाता था और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसे अच्छे से समझना मुश्किल है। विवाह की उम्र काफी कम थी। बंगाल में तो विवाह की उम्र केवल आठ या नौ साल ही थी। बनारसीदास का विवाह ग्यारह साल की उम्र में ही हो गया था। हालांकि अपने शासन के 33 वें वर्ष में अकबर ने लड़कियों की शादी की उम्र 14 वर्ष और लड़कों की शादी की उम्र 16 वर्ष तय कर दी थी, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इस नियम का सख्ती से पालन नहीं किया गया था। इसी तरह, अकबर ने विधवा पुनर्विवाह को भी प्रोत्साहित किया था। हिंदुओं में एकपतित्व (monogamy) की प्रथा प्रचलन में थी। फिर भी, उच्च बाल मृत्यु दर की वजह से पत्नी की मृत्यु के बाद दुबारा शादी करना भी आम प्रचलन में था। बनारसीदास की पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने अपनी पत्नी की बहन से विवाह किया और उसकी मृत्यु के बाद फिर से उसी इलाके की एक दूसरी लड़की से शादी कर ली। कानून के मुताबिक मुसलमानों को चार पत्नियां रखने की अनुमति थी। लेकिन, सूरत के *निकाहनामे* (विवाह समझौता) पुरुषों/महिलाओं के पारिवारिक संबंधों पर दिलचस्प रोशनी डालते हैं। एक *निकाहनामा* में पत्नी ने *मेहर* के रूप में यह शर्त रखी कि उसका शौहर दूसरी शादी नहीं करेगा और अपनी पत्नी के साथ मार-पीट की कोशिश भी नहीं करेगा। यह भी मांग की गई कि दूल्हा अपनी पत्नी को नहीं छोड़ेगा (क्योंकि लंबे समय की अनुपस्थिति के कारण व्यापारी समुदायों में यह एक सामान्य बात थी) और रखरखाव प्रदान करने में चूक नहीं होगी। एक अन्य दृष्टांत में यह शर्त रखी गई कि शौहर किसी गुलाम लड़की को अपनी 'रखैल' के रूप में नहीं रखेगा, अन्यथा उसे बेचने या मुक्त करने का अधिकार पत्नी का होगा। किसी भी शर्त के उल्लंघन से विवाह टूट सकता था (मूसवी, 1992: 401-402)।

पंद्रहवीं शताब्दी के एक ग्रंथ, *ज्ञान पंचमी कथा* में उल्लिखित है कि बेटी का जन्म दुःख का कारण होता है, इस कथन से मध्य काल के दौरान महिलाओं की स्थिति का स्पष्ट रूप से पता चलता है। सामान्य तौर पर महिलाओं को *परदे* में रखा जाता था ताकि लोगों की नजर उन पर न पड़े। बर्नियर के अनुसार शाही महिलाओं को 'पुरुषों की नजरों से दूर' रखा जाता था। अकबर के समय से यह पृथकता ज्यादा ही प्रखर हो गई थी। लेकिन, 'पुरूष प्रधान' पितृसत्तात्मक राज्य में कुलीन महिलाओं की दृश्यता बहुत स्पष्ट थी। मुगल शाही महिलाएं सम्राट को सलाह देती, हुक्म (आदेश) जारी करती, और प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाती नजर आती हैं। बाबर की दादी एहसन दौलत बेगम, बाबर को 'विवेकपूर्ण' सलाह दिया करती थी। नूरजहां और मुमताज महल, जहांगीर और शाहजहां की शक्तिशाली पत्नियां थीं। नूरजहां ने अपने रिश्तेदारों और ईरानी/राजपूत अमीरों को मिलाकर स्वयं एक गुट का गठन कर रखा था। महाबत खान के विद्रोह के

दौरान उन्होंने अपनी उत्कृष्टता का नमूना पेश करते हुए जहांगीर को मुक्त करवाया था। इसी तरह, राजा मान सिंह की अनुपस्थिति में, आमेर राज्य का प्रबंधन रानी गौड़ द्वारा किया गया। अबुल फजल ने अकबर की सेना के खिलाफ रानी दुर्गावती की बहादुरी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। शाही मुहर हमेशा मुख्य रानी के पास ही रखी जाती थी। शाहजहां की बेटी जहाँआरा और औरंगजेब की बेटी जीनतुन्निसा बेगम भी प्रभावी और शक्तिशाली महिलाओं की फेहरिस्त में शामिल हैं। इस प्रकार शाही महिलाएं राज्य की राजनीति में सक्रिय रूप से प्रतिभागी थीं। मध्य काल के व्यापारी परिवारों की महिलाओं द्वारा अपने पतियों के व्यवसाय के देखभाल करने के विवरण भी मिलते हैं। जब सूरत के एक व्यापारी की मक्का की यात्रा के दौरान मौत हो गई, तब उसकी विधवा ने अपने पति के व्यापार की देखभाल के लिए काजी से अनुमति मांगी। हालांकि, महिलाएं तब तक ही शक्तिशाली रहीं जब तक कि वे पुरुषों के 'पुरुषत्व' के लिए खतरा नहीं बनीं। मानुकी के अनुसार मुगल *हरम* को 'बिना दांतों वाली', 'बूढ़ी औरत' (matron) और '*ख्वाजासराओं*' की सख्त निगरानी में रखा जाता था। यहां तक कि *जनाना* में महिलाओं की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए जासूस भी नियुक्त किए जाते थे।

मध्ययुगीन भारत में महिला श्रमिक बल भी समान रूप से प्रभावी था, जो कि एक आम नजारा था। शहरी क्षेत्रों में सबसे बड़ा नियोक्ता निर्माण उद्योग था। मुगल चित्रों में इन्हें ईंटों और पत्थरों को तोड़ते हुए, चूने को छानते हुए और निर्माण स्थल पर गारा ले जाते हुए दर्शाया गया है। इससे यह भी पता चलता है कि बड़े पैमाने पर ये अकुशल श्रमिक के तौर पर कार्यरत थीं। उनके बदन पूरी तरह से कपड़ों से ढके होते थे लेकिन वे घूंघट में दिखाई नहीं देतीं, लेकिन अपने सिर को चादर/*ओढ़नी* से ढककर अवश्य रखती थीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके रोजगार की क्षमता ने उन्हें सशक्त बनाया। हम उन्हें घूंघट का उपयोग करते हुए नहीं देखते हैं, जिसे मध्ययुगीन उच्च वर्गों की महिलाओं पर थोपा गया था। उनके परिधानों से यह स्पष्ट होता है कि दोनों, हिंदू और मुस्लिम, महिलाएं निर्माणकार्य में कार्यरत थीं। हिंदू महिलाओं को *अंगरखा* और *चोली* पहने दर्शाया गया है; जबकि मुस्लिम महिलाओं को *पेशवाज* (लंबा कुर्ता) पहने हुए दर्शाया गया है। दिलचस्प बात यह है कि उनके समकक्ष पुरुषों को केवल लंगोटा पहने हुए दिखाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अकुशल श्रमिकों के वेतन बहुत ही कम थे। हालांकि, कुशल श्रमिक/संगतराश, राजमिस्त्री इत्यादि को उन्हीं चित्रों में पूरी तरह से कपड़े पहने हुए दिखाया गया है, जिससे यह पता चलता है कि उन्हें ज्यादा मजदूरी मिलती थी और सामाजिक पदानुक्रम में वे उच्च स्थान पर थे। अबुल फजल के अनुसार निर्माण उद्योग में न्यूनतम दैनिक मजदूरी मात्र 2 *दाम* होती थी। टैवर्नियर बुरहानपुर में चावल, मक्खन, सब्जियां आदि घूम-घूम कर बेचने वाली महिलाओं का उल्लेख करता है। एक अन्य पेशा, जहां महिलाओं को प्रमुख रूप से नियुक्त किया जाता था, वह था *सरायों* की देख-रेख। सोलहवीं शताब्दी में भारत आने वाले एक ईरानी व्यापारी रफीउद्दीन शीराजी बताते हैं कि 'लोगों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाली सड़कों पर हर *फर्साख* (ढ़ाई मील) या आधे *फर्साख* पर, इस देश के शासकों/अमीरों ने *सराएं* स्थापित किए हैं, जहां *भटयार* जाति के पुरुषों को नियुक्त किया जाता है ताकि, जब भी कोई यात्री वहां पहुंचे, तब वे किराए पर वहां रह सकते हैं और *भटियारी* महिला अपनी मजदूरी लेकर उनके स्वाद के अनुसार उनके लिए भोजन बनाती हैं' (मूसवी, 1993: 20 में उद्धृत)। यूरोपीय यात्रियों – विथिंगटन (1612-13) और पीटर मंडी (1630) – ने सामान्य तौर पर *सरायों* के रखरखाव के लिए *भटियारी* महिलाओं की विशिष्ट उपस्थिति का उल्लेख किया है। प्रसूति के लिए दाई का कार्य भी विशेष रूप से महिलाएं ही किया करती थीं।

बड़ी संख्या में महिलाएं घरेलू नौकरों के रूप में कार्यरत थीं। पेल्सर्ट के अनुसार अमीरों की पत्नियों के पास कम से कम दस सेविकायें होती थीं। जहां तक इन घरेलू

सेविकाओं की मजदूरी का संबंध है, मुगल *हरम* में कार्यरत महिलाओं की मासिक मजदूरी के भुगतान की दो श्रेणियाँ थीं – पहली श्रेणी वाली सेविकाओं की मजदूरी 20 से 51 रुपए प्रतिमाह थी और दूसरी श्रेणी वाली सेविकाएं, जो प्रथम श्रेणी से थोड़ी निम्न स्तर की होती थीं, की मजदूरी 2 से 40 रुपए प्रतिमाह तक थी (मूसवी, 1993: 28)।

मुगल परिवार और अभिजात वर्ग के लोगों के बीच 'रखैल' प्रथा का प्रचलन था, यह शादी किए बगैर पूरी तरह से आनंद के लिए दासत्व के बंधन की एक व्यवस्था थी। किसी भी स्वतंत्र या दास लड़की, या युद्ध में बंधक बनाई हुई लड़की या औरत को अपने स्वामित्व में लेकर 'रखैल' बनाए जाने की प्रथा थी। जब किसी गुलाम लड़की को 'रखैल' बनाया जाता था तो गुलाम लड़कियों के बीच उसकी स्थिति बदल जाती और अब वह कुछ विशेषाधिकारों की हकदार हो जाती थी। अगर वह किसी बच्चे को जन्म दे देती थी, तो भी वह गुलामी से मुक्त नहीं हो जाती थी, लेकिन इसके बाद उसे फिर से बेचा नहीं जा सकता था या उपहार के रूप में किसी और को नहीं दिया जा सकता था। हालांकि उनकी स्थिति कानूनी रूप से विवाहित पत्नियों... जिनकी स्थिति सर्वोच्च थी, से अलग होती थी। बाबर पत्नियों के लिए *ख्वातीनलार* शब्द का प्रयोग करता है। कानूनी तौर पर विवाहित पत्नियां *हरम* का हिस्सा होती थीं, लेकिन उनमें से जो कुलीन परिवार से नहीं होती थीं उन्हें उच्च दर्जा नहीं दिया जाता था और उन्हें *आगा* कहा जाता था; जबकि रखैलों को *आगाचा* शब्द से संबोधित किया जाता था। कभी-कभी अपने मालिक/पति की इच्छा के आधार पर उन्हें कानूनी रूप से विवाहित पत्नी का दर्जा भी प्राप्त हो जाता था। इन उपपत्निओं को *घुनचाची* (प्रियतमा)/*सरारी* ('रखैल') या बस बीबी के रूप में जाना जाता था। यद्यपि 'रखैलों' का ओहदा पत्नियों से कम था, लेकिन उनके बच्चों का दर्जा एक समान होता था और उनकी स्वीकार्यता में कोई भेदभाव नहीं होता था। अकबर के छोटे बेटे, मुराद और दानियाल उसकी 'गणिकाओं' से थे। औरंगजेब का प्रिय बेटा काम बक्श की माँ उदयपुरी बेगम थी, जो पहले दारा की 'गणिका' थी। अबुल फजल उल्लेख करता है कि अकबर के अधीन सभी स्वतंत्र और दास पत्नियों को *परिस्तारान* के रूप में जाना जाता था। अबुल फजल के अनुसार उच्च पत्नियों को 51 से 20 रुपए का भत्ता मिलता था और निम्न श्रेणी की पत्नियों को 40 से 10 रुपए का भत्ता मिलता था। जहांगीर ने इन उपपत्निओं को *ख्वास-ए खिदमतगारान* (बानो, 1999: 353-357) कहा। पेल्सर्ट (1916: 64) के अनुसार मुगल सरदारों ने भी शासकीय परिवार की जीवन शैली की नकल की और कई उपपत्नी/*सरारी* रखीं: 'सामान्यतः उनकी तीन या चार पत्नियां होती हैं, जो अभिजात्यों की बेटियां होती हैं, परंतु इनमें सबसे वरिष्ठ पत्नी का सबसे ज्यादा सम्मान होता है ... प्रत्येक पत्नी के अपने और अपने दासों के लिए अलग-अलग आवास हैं, जिनमें वे अपनी हैसियत के अनुसार 10, 20 या 100 दासों को रख सकती थीं। प्रत्येक को व्यय करने के लिए नियमित मासिक भत्ता मिलता था'।

24.7 नागरिक समाज

मैक्स वेबर का तर्क है कि गैर-पश्चिमी शहरों में नागरिक समाज (नगरपालिका, प्रशासनिक परिषद्, पार्षद्, महापौर, आदि) का पूर्ण अभाव था और न ही सामाजिक समूहों के बीच कोई वर्ग चेतना विद्यमान थी। 'नागरिकों' का कोई निगमित निकाय भी मौजूद नहीं था। राज्य की सत्ता के बाहर शहर के व्यापारियों और कारीगरों के लिए कोई स्वतंत्र कानूनी और न्यायिक संस्था नहीं थी। हालांकि, हॉलटन (1986: 123-128) का मानना है कि यूरोपीय और गैर-यूरोपीय समाजों में शायद ही कोई अंतर था। उन्होंने इस पर काफी बल दिया कि यह विवादास्पद है कि पश्चिमी शहर अपने गैर-पश्चिमी समकक्षों से कितने भिन्न हैं, जहां समान रूप से वंशानुगत और जनजातीय संबंध

निस्संदेह बने रहे ... पश्चिमी [यूरोपीय] शहर पारिवारिक वंशवाद के साथ श्रेणियों और बिरादिरी से घिरे हुए थे, शहरी जीवन के इस बहुलवादी आधार की तथाकथित बदलती तस्वीर शायद अपने गैर-पश्चिमी समकक्षों से कुछ ज्यादा अलग नहीं थी (हॉलटन, 1986: 124)।

हालांकि, हमारे स्रोत यह इंगित करते हैं कि मध्य काल में नागरिक समाज की उपस्थिति थी। अहमदाबाद में मुहल्लों को *पोल* कहते थे जो *प्रतोली* (फाटक) द्वारा संरक्षित होते थे; जबकि इस्लामी प्रभाव के कारण इन्हें *मोहल्ला* के रूप में जाना जाने लगा जो बंद फाटकों से संरक्षित होते थे। शहर का *कोतवाल* एक राजकीय अधिकारी होता था लेकिन अबुल फजल स्पष्ट रूप से *मीर-ए मोहल्ला/ सर-ए गिरोह* की उपस्थिति का उल्लेख करता है:

> शिल्पकारों की प्रत्येक श्रेणी से समाज का एक मुखिया (*सर-ए गिरोह*) और एक *दलाल* को नामित किया जाना चाहिए, जिनके ज्ञान से खरीद और बिक्री का व्यवसाय हो सके (*आईन*, 1978: II, 44)।

> हर नगर, कस्बा और गांव (*शहर, कस्बा व देह*) में *कोतवाल* को ... हर इलाके (*मोहल्ला*) में स्थित घरों के निवासियों के विवरण लिखना चाहिए... सड़कों का रखरखाव किया जाना चाहिए और सड़क के अधीक्षक (*मीर-ए मोहल्ला*) को नियुक्त किया जाना चाहिए ताकि उनके नेतृत्व में सड़कों का रखरखाव सही दिशा में हो सके (*मीरात* 1928: I, 145)।

मिश्रा (बिना तिथि के: 85) का तर्क है कि, 'स्थानीय संगठनों के साथ मिलकर अधिकारियों द्वारा हर घटनाओं पर पैनी नजर रखने की आवश्यकता शहर की स्वाभाविक चिंता को दर्शाता है'। ये क्षेत्रीय इलाके (*पोल, मोहल्ला*) बड़े फाटकों द्वारा संरक्षित किए गए थे, जिसमें आने-जाने के लिए छोटे द्वार खुले होते थे और प्रवेश करने वाले सभी अजनबियों पर विशिष्ट निगरानी रखी जाती थी। गुजरात में प्रत्येक *पोल/मोहल्ला* में एक व्यापारी और शिल्पकार का निकाय होता था जिसे *महाजन* कहा जाता था। इन *महाजनों* के मुखिया को *सेठ/शेठ* कहा जाता था और इन सभी *सेठों/शेठों* का मुखिया *नगरसेठ/नगरशेठ* कहलाता था। छोटे से छोटे शिल्प के भी, यहां तक कि ईंट, टोकरी इत्यादि बनाने वालों के भी अपने अलग *सेठ* होते थे। दोनों की स्थिति वंशानुगत थी। अहमदाबाद का *नगरसेठ* बहुत शक्तिशाली था। वह संपूर्ण व्यवसायिक संस्थानों का प्रमुख होता था और प्रत्येक शिल्प/व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से संबंधित सभी विवाद/मामलों का समाधान उसके द्वारा किया जाता था। हालांकि, उसे *महाजन* के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक अराजकता के कारण *नगरसेठों* की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। उन्होंने बाहरी खतरों से सुरक्षा का दायित्व भी ले लिया। जब अहमदाबाद पर मराठों ने हमला किया तो *नगरसेठ* ने मराठों को फिरौती देकर शहर को बचाया। बदले में 'महाजनों ने संयुक्त रूप से उसे चिरकाल के लिए शहर के करों का एक निर्धारित अंश प्रदान करने का वादा किया'। नगर-स्तर की यह संस्था सिर्फ हिंदुओं की ही संस्था नहीं थी, बल्कि इसमें हिंदु और मुसलमान दोनों भागीदार थे। 1714 में कपूरचंद भंसाली *नगरसेठ* थे जबकि मुल्ला अब्दुल अजीज बोहराओं के *सेठ* थे। *सेठ* अपने समुदाय के आचार-व्यवहार के लिए उत्तरदायी थे। इस प्रकार, मध्ययुगीन शहरों में स्वयं के 'स्व-प्रशासनिक संस्थान' थे (मिश्रा, बिना तिथि के: 85-90)। यद्यपि हम शाहजहानाबाद और अन्य शहरों में *नगरसेठों* की कार्यप्रणाली के बारे में बहुत कुछ नहीं जानते हैं, लेकिन शाहजहानाबाद के दरीबा कलान बाजार में *नगरसेठ* की हवेली की मौजूदगी यह दर्शाती है कि यह एक अखिल भारतीय लक्षण था।

24.8 शहर और अंतर-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

मध्यकालीन शहर महानगरीय संस्कृतियों के जीवंत केंद्र थे। शहरों के बाहरी इलाके में स्थित *सूफी खानकाह*, सांस्कृतिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण केंद्र थे। महरौली की सभी *सूफी खानकाहें* हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए समान रूप से पवित्र थीं, और इसी प्रकार दिल्ली में निजामुद्दीन औलिया की *दरगाह*, अजमेर में शेख मोइनुद्दीन चिश्ती की *दरगाह* और गुलबर्गा में गेसुदराज की *दरगाह* दोनों ही समुदायों के मध्य पूजनीय थीं। हिंदू और मुस्लिम दोनों ही समान भाव से हिंदू त्योहार दीपावली मनाया करते थे। इसी प्रकार, *मुरक्का-ए दिल्ली* में वर्णित है कि मजनून नानक शाही को हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के द्वारा एक जैसा सम्मान दिया जाता था और उनके अनुयायी अपने अनूठे तरीके से मुहर्रम मनाया करते थे। दिल्ली में बसंत पंचमी उत्सव पैगंबर के पदचिह्न से शुरू होता था और दोनों समुदायों के लोग इसमें सम्मिलित रूप से भाग लेते थे। इसी तरह, *मुरक्का* में जिक्र है कि जब जावेद खान इमाम हुसैन की याद में शोकगीत (*मर्सिया ख्वानी*) गाया करते थे तो समस्त समुदायों के लोग उन्हें सुनने के लिए इकट्ठा हो जाते थे। इसी प्रकार, इमाम हुसैन के *ताजिया खाना* में भी सभी समुदायों के लोग एकत्रित होते थे (हसन, 2005: 90)। अजमेर में भैरोजी के नगरीय मंदिर का पुजारी एक मुस्लिम था, जो उस मंदिर की देखभाल करता था (मोइनी, 2015: 117)। *खानकाहों* में *उर्स* के उत्सव, *समा* महफिल इत्यादि शहर के सीमांत क्षेत्रों में उपस्थित *खानकाहों* के आसपास होने वाले आम कार्यकलाप थे। कदम शरीफ में पैगंबर मुहम्मद के जन्मदिन समारोह (*शबे बरात*) और अरब की सराय में बसंत पंचमी के त्यौहार के अवसर पर हिंदू और मुसलमान दोनों समान उत्साह से एक साथ भाग लेते थे; दीप जलाए जाते थे और सभी मिलकर आतिशबाजी करते थे। दरगाह कुली खान के अनुसार, नासिरुद्दीन चिराग की कब्र पर हिंदू और मुस्लिम दोनों ही बड़ी संख्या में इकट्ठे होते थे और पास स्थित तालाबों में डुबकी लगाते थे, खासकर दीपावली के महीने के दौरान।

कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि त्योहार आम विरासत का एक हिस्सा थे। मुगल चित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि होली, राखी, दशहरा, दीपावली और ईद सभी त्योहार शाही दरबार में समान उत्साह के साथ मनाए जाते थे। यहां तक कि शिवरात्रि के अवसर पर अकबर और जहांगीर दोनों ही विशाल प्रीतिभोजों का आयोजन करते थे और इस अवसर पर *योगियों* को बड़ी संख्या में आमंत्रित करते थे। बर्नियर (1916: 243) के अनुसार शहर के बाजार 'तमाशा दिखाने वालों, बाजीगरों और ज्योतिषियों' से भरे थे।

शिक्षा भी प्रतिबंधित धार्मिक सीमाओं से परे प्रतीत होती है। ऐसा नहीं था कि केवल मुसलमानों को ही पढ़ने लिखने के लिए *मकतब* में शामिल किया जाता था। शाहजहां के शासनकाल के मशहूर मुंशी बालकृष्ण ब्राह्मण को हिसार के अखुंद अब्दुल हमीद के मकतब में भेजा गया था, वहां से उन्हें गणित और लेखाशास्त्र के अध्ययन के लिए *दफ्तर खाना* (लेखाकार का कार्यालय) भेजा गया, जिसे उन्होंने पसंद नहीं किया और बाद में वे शेख जलाल हिसारी के पास गए और वहां उनके तत्वाधान में फारसी गद्य (*इनशा*), कविता, रहस्यवाद और नीति शास्त्र में निपुणता प्राप्त की। यहां तक कि एक हिंदू ब्राह्मण को मस्जिद में बैठकर ग्रंथों की प्रतिलिपि बनाने में भी कोई हिचक नहीं थी। शेख जलाल हिसारी ने एक पत्र में अपने एक मित्र से अनुरोध किया कि वो *बहार-ए अबरार* से एक *कसीदे* (कविता) की प्रतिलिपि बनाने की अनुमति दें जिससे बालकृष्ण, जो एक हिंदु ब्राह्मण थे, उसकी प्रतिलिपि मस्जिद के अंदर बैठकर बना सके क्योंकि शायद उस पुस्तक को मस्जिद के परिसर के बाहर ले जाने देने में उनके मित्र को हिचकिचाहट हो रही थी।

24.9 जीवंत नगर और साहित्यिक संस्कृति

शहरी केंद्र वो थे जहां कवि, साहित्यिक प्रकृति के व्यक्ति, विद्वान इत्यादि अच्छे अवसरों और संरक्षकों की खोज में अपनी प्रतिभाओं को प्रकट करने के लिए इकट्ठे होते थे। *अहल-ए कलम* (कलम के धनी पुरुष) शहरी सामाजिक जीवन की कुंजी थे। *मुरक्का* के अनुसार शाहजहानाबाद में *कहवा खाने* ऐसी जगहें थीं जहां साहित्यिकार रोजाना इकट्ठे होते थे और अपनी रचनाएं सुनाते थे। यहां तक कि अमीरों की निजी *महफिलें* भी नर्तकियों और संगीतकारों से भरी होती थीं। खाफी खान का मानना था कि ये सब पतन के संकेत हैं। वे अफसोस जताते हैं कि अमीरों के बेटों ने अपने पारंपरिक व्यवसायों को त्याग दिया है और वे संगीत में अपनी प्रतिभा की तलाश कर रहे हैं। दरगाह कुली खान अपने *मुरक्का* में वर्णन करते हैं कि दिल्ली में 'संगीत एक लोकप्रिय और मनोरंजन का व्यापक रूप था' (चिनॉय, 2015: 180)। इसके अतिरिक्त, *मर्सियाख्वानी* भी काफी लोकप्रिय थी, जहां हजरत इमाम हुसैन की प्रशंसा में *मर्सियाख्वानों* द्वारा शोकगीत गाए जाते थे। मुहम्मद शाह के अमीर के बेटे जावेद खान, *मर्सिया* गाने में काफी कुशल थे। मुहर्रम के दौरान लोग उन्हें सुनने के लिए *अशुरा खानों* (जहां हजरत इमाम हुसैन की मृत्यु का स्मरण किया जाता है) में इकट्ठा हुआ करते थे। नैमत खान उर्फ सादा रंग, बीन बजाने में प्रवीण थे। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दिल्ली में हसन खान रबाबी, बाकिर तंबूर्ची, गुलाम मुहम्मद सारंगी-नवाज, घासी राम पखावजी सरीखे कई महान् संगीतकार हुए; जबकि मियां हिंगा किले के बाहर भी नृत्य किया करते थे (चिनॉय 2015: 181-182)। शाहजहानाबाद सरीखे राजधानी शहरों में अमीरों की हवेलियों में *मुशायरा* (कविता की महफिल) का आयोजन आम बात थी। खान दौरान के *मुशायरों* में बहुत सारे कवि आया करते थे। शाहजहां के अमीर शाह नवाज सफावी के पास बड़ी संख्या में इतने संगीतकार और गायक थे जितने किसी अन्य अमीर के घर में भी नहीं थे (ब्लेक 1991: 139)। संगीत का आयोजन मनोरंजन और विश्राम के सबसे सुगम साधन थे। शाहजहां के पसंदीदा गायक और संगीतकार (*कलावंत*) कविंद्र, चित्रा खान, लाल खान और श्रीमन थे। मुहम्मद शाह, जो खुद भी संगीत के शौकीन थे, उनके दरबार में बोली खान (*कलावंत*) और जट्टा (*कव्वाल*) को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। दरगाह कुली खान के अनुसार रहीम खान, दौलत खान, कियान खान, और हड्डू भाइयों को उनके ख्याल गायन के लिए इतने उच्च सम्मान प्राप्त थे, कि महीने के हर 25वें दिन गायक, आम जनता और अमीर शाहजहानाबाद में उनके गायन को सुनने के लिए इकठ्ठा हुआ करते थे (ब्लेक से उद्धृत, 1991: 158)। अठारहवीं शताब्दी में शाहजहानाबाद शहर गायकों और नर्तकियों के कारण काफी जीवंत था, उन्हें शहर की हर गली तथा नुक्कड़ में देखा जा सकता था। *मुरक्का* के अनुसार जब मियां मीर हैगा किले के दरवाजे के सामने उर्दू बाजार के चौराहे पर नृत्य करते थे तो प्रतिदिन अमीरों और आम लोगों की भीड़ एक साथ उनके नृत्य को देखने के लिए इकट्ठा हुआ करती थी (ब्लेक में उद्धृत: 1991: 159)।

मदरसा (माध्यमिक विद्यालय) और *मकतब* (प्रारंभिक विद्यालय) हमेशा मस्जिदों से जुड़ा हुआ होता था जहां प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी। बनारसीदास और मुहम्मद गौस शत्तारी के शैक्षणिक जीवन, शहरों में शिक्षा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं। बनारसीदास, जो एक जैन बनिया थे, उन्हें एक ब्राह्मण शिक्षक के पास पढ़ना और लिखना सीखने के लिए एक गुरुकुल (*चट्साल*) भेजा गया था। तत्पश्चात् उन्होंने पंडित देवदत्त से पारंपरिक शास्त्रों और जैन विद्वानों से धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया। इसके विपरीत, बालकृष्ण ब्राह्मण को अपनी प्रारंभिक शिक्षा के लिए एक *मकतब* (ऊपर वर्णित) भेजा गया था। इन *मकतबों* के पाठ्यक्रम अच्छी तरह से परिभाषित थे और समयानुसार इनमें संशोधन भी किया जाता था। सिकंदर लोदी ने पाठ्यक्रम को संशोधित और

विस्तारित किया; जो अकबर के तत्वावधान में फिर से फतउल्लाह शिराजी द्वारा संशोधित किया गया; बाद में अठारहवीं शताब्दी में लखनऊ के फिरंगी महल के मौलाना निजाम अल-दीन ने पाठ्यक्रम को फिर से संशोधित किया, जिसे *दर्स-ए निजामिया* कहा जाता है। विद्यार्थियों को अरबी, फारसी, इस्लामी कानून (*फिक्ह*, *तफसीर* और *हदीस*), *कलाम* (शास्त्रीय दर्शन) और *मतीक़* (तर्कशास्त्र) में प्रशिक्षण दिया जाता था। चंद्रभान ब्राह्मण, सुजान राय भंडारी, आनंदराम मुखलिस प्रवीण फारसी *इनशा* लेखक और *मुंशी* थे।

अभिजात्य महिलाओं को प्राथमिक स्तर पर समान स्तर की शिक्षा दी जाती थी। कई शाही महिलाएं असाधारण कविताओं की रचनाकार थीं। अकबर की बुआ, गुलबदन बेगम को फारसी और तुर्की का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने कई कविताओं की रचना की और साथ ही अकबर के अनुरोध पर *हुमायूं नामा* भी लिखा। औरंगजेब की बेटी ज़ेब अल-निसा एक महान् कवयित्री थी और *मख्फी* (गुप्त) के छद्म नाम से कविताओं की रचना करती थी। उन्होंने एक विशाल पुस्तकालय बनाया और कलाकारों के प्रशिक्षण के लिए *बैत-उल उलूम* (अकादमी) की स्थापना की।

मुगल सम्राट, विशेषकर, बाबर और जहांगीर, महान् लेखक थे। अकबर का पुस्तकालय विशाल था जिसमें लगभग 26,000 पुस्तकें थीं। अकबर के अमीर अब्दुर रहीम खान-ए खाना कवियों, लेखकों, विद्वानों, खुशनवीसों (calligrapher) और चित्रकारों के महान् संरक्षक थे। वह स्वयं एक महान् *इनशा* लेखक थे, जिन्होंने अब्दुल्लाह खान उजबेग के लिए पत्र तैयार किया था। वे खुद भी हिंदी कविता के एक महान् विद्वान थे और साथ ही उन्होंने कई हिंदी कवियों को संरक्षण प्रदान किया था। उनके पास एक निजी पुस्तकालय था जहां 95 खुशनवीस, जिल्दसाज, चित्रकार इत्यादि कार्यरत थे। इसी तरह, खान दौरान के पुस्तकालय में भी कई खुशनवीस थे। सादुल्लाह खान ने लाल किले का सुलेख तैयार किया था; औरंगजेब के अमीर आकिल खान एक महान् *मसनवी* लेखक थे। अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में दिल्ली में उर्दू के कई नए कवियों का उद्भव हुआ, जैसे मिर्जा अब्दुल बेदिल (मृ. 1720), जाफर जट्टाली (मृ. 1713), मिर्जा मजहर जान-ए जहान (1702-1781)।

बंगाल में वैष्णव भक्ति के प्रभाव में कई संत कवि उभरे। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान वैष्णव भक्ति के प्रभाव में अनेक महिलाओं ने भाषा और साहित्य में अपनी रुचि जताई। झन्नवा देवी *भक्ति शास्त्र* में अच्छी तरह से निपुण थीं; इसी तरह श्रीनिवास आचार्य की बहू सत्यभामा देवी दार्शनिक व्याख्यानों में भाग लिया करती थीं। नित्यानंद की बहू ने *अनंगा कादंबाबली* की रचना की।

24.10 सारांश

शहर सामाजिक संबंधों के नेटवर्क के साथ-साथ आर्थिक अवसरों के लिए एक फलते-फूलते उपयुक्त स्थान थे। मध्यकालीन शहरी संस्कृति पर दरबारी संस्कृति का प्रभुत्व था। *अशराफ* और *अजलाफ* के मध्य सामाजिक पदानुक्रम मौजूद था, फिर भी, विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच 'अलगाव' की तुलना में 'पराचर-संबंध' अधिक प्रगाढ़ था। सामाजिक सामंजस्य और परा-सांस्कृतिक मेल-मिलाप मध्यकालीन शहरी सामाजिक लोकाचारों की महत्वपूर्ण 'कुंजी' थी।

24.11 अभ्यास

1) मध्यकाल में *अखलाक* ने शहरी सांस्कृतिक लोकाचारों को किस तरीके से प्रभावित किया?

2) मध्ययुगीन शहरी सामाजिक संरचना संभ्रांत और आम लोगों के सह-अस्तित्व को प्रस्तुत करती है। टिप्पणी कीजिए।

3) बर्नियर के इस विश्लेषण पर टिप्पणी करें कि मुगलकालीन भारत में कोई 'मध्य वर्ग' नहीं था।

4) मुगलकालीन भारत में गुलामों और घरेलू सेवक-सेविकाओं के रहन-सहन के बारे में विस्तार से लिखें।

5) मध्य काल में पारिवारिक संबंध किस प्रकार नियंत्रित होते थे? मुगलकालीन भारत में महिलाओं की स्थिति के संदर्भ में विस्तार से लिखिए।

6) 'पूर्वी देशों' में 'नागरिक समाज' की अनुपस्थिति के मैक्स वेबर के विचार पर मध्ययुगीन शहरी समाज के संदर्भ में टिप्पणी कीजिए।

7) मध्यकालीन समाज वास्तव में परा-सांस्कृतिक लोकाचार के घुल-मिल जाने का प्रतिनिधित्व करता है। व्याख्या कीजिए।

24.12 संदर्भ ग्रंथ

अबुल फजल अल्लामी, दि *आइन-ए अकबरी*, अनु. जैर्रेट्ट, एच.एस. एवं जदुनाथ सरकार (नई दिल्लीः ओरिएण्टल बुक्स रिप्रिंट).

बानो, शादाब, (1999) 'कॉन्कुबाइनेज एण्ड मैरिज इन दि मुगल डाइनेस्टी एण्ड एरिस्टोक्रेसी', *प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस*, 60वां सेशन, कालीकट.

बर्नियर, फ्रांकॉइस, (1916) *ट्रेवेल्स इन दि मोगुल एम्पायर एडी 1656-1668*, अनुवाद अनुमोदन आर्चीबाल्ड कांस्टेबल, द्वितीय संस्करण विंसेंट ए. स्मिथ (लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

ब्लेक, स्टीफन पी., (1991) *शाहजहानाबादः दि सॉवरिन सिटी इन मुगल इण्डिया 1639-1739* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

हबीब, इरफान (2008) *मिडिवल इण्डियाः दि स्टडी ऑफ सिविलाइजेशन* (नई दिल्लीः नेशनल बुक्स ट्रस्ट).

हसन, नुरूल एस., (2005) 'दि मोर्फोलॉजी ऑफ ए मिडिवल इण्डियन सिटीः ए केस स्टडी ऑफ शाहजहानाबाद', बंगा, इन्दु (संपा.), *दि सिटी इन इण्डियन हिस्ट्री* (नई दिल्लीः मनोहर).

हॉल्टन, आर. जे., (1986) *सिटीज, कैपिटलिज्म एण्ड सिविलाइजेशन* (लन्दनः ऐलन एण्ड अनविन).

खान, अली मुहम्मद, (1928) *मिरात-ए अहमदी*, अनु. लोखण्डावाल, एम.एफ., भाग 2 (बड़ौदाः ओरिएण्टल इंस्टीट्यूट).

खान, इक्तिदार आलम, (1976) 'दि मिडिल क्लासेज इन दि मुगल एम्पायर', *सोशल साइंटिस्ट*, भाग 5 नं. 1 अगस्त.

खान, शाह नवाज, (1979) *दि माआसिर-उल उमरा*, अनुवाद एच. बेवरिज, भाग I (पटनाः जानकी प्रकाशन).

मिश्रा, एस.सी., (कोई तिथि नहीं) 'सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि सेल्फ एडमिनिस्टरिंग इंस्टीट्यूशन्स इन मिडिवल इण्डियन टाउन्स', ग्रेवाल, जे.एस. एवं इन्दु बंगा, (संपा.), *स्टडीज इन अर्बन हिस्ट्री* (अमृतसरः गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी).

मोइनी, लियाकत हुसैन, (2015) *दि दरगाह ऑफ ख्वाजा गरीब-उन-नवाज आफ अजमेर,* (जोधपुरः बुक्स ट्रैजर).

मूसवी, शीरीन, (1992) 'ट्रैवेल्स ऑफ ए मेर्केटाइल कम्यूनिटीः आस्पेक्ट्स ऑफ सोशल लाइफ एट दि पोर्ट ऑफ सूरत (अर्ली हाफ ऑफ दि 17वीं सेंचुरी)', *प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 52वां सेशन, नई दिल्ली.

मूसवी, शीरीन, (1993) 'वर्क एण्ड जेण्डर इन प्रि-कोलोनियल इण्डिया', *इण्टरनेशनल वर्कशॉप ऑन हिस्टोरिकल डिमोग्राफी,* टोकियो में प्रस्तुत.

मूसवी, शीरीन, (2011) 'दि वर्ल्ड ऑफ लेबर इन मुगल इण्डिया (*c.* 1500-1750)', *प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 51वां सत्र, माल्दा.

मोरेलैण्ड, डब्ल्यू, एच., (1962) *इण्डिया ऐट दि डेथ ऑफ अकबर* (दिल्लीः आत्मा राम एण्ड संस).

मुखिया, हरबंस, (2004) *दि मुगल्स ऑफ इण्डिया* (नई दिल्लीः विली इण्डिया).

ममफोर्ड, लेविस, (1961) *दि सिटी इन हिस्ट्रीः इट्स ऑरिजिन्स, इट्स ट्रांसफॉर्मेशन्स एण्ड इट्स प्रोस्पेक्ट्स* (न्यू यॉर्कः हारकोर्ट ब्रूस एण्ड वर्ल्ड)

रायचौधरी, तपन, (1953) *बंगाल अण्डर अकबर एण्ड जहांगीरः एन इन्ट्रोडक्टरी स्टडी इन सोशल हिस्ट्री* (कलकत्ताः ए. मुखर्जी).

रे, अनिरूद्ध, (1999) 'फ्रेंच व्यू ऑफ स्लेवरी इन मिडिवल इण्डिया', *प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 59वां सत्र, पटियाला.

रिजावी, सैयद अली नदीम, (1998) 'यूनिकनेस ऑफ दि ईस्टर्न ''इम्पीरियल सिटी''? टेस्टिंग दि मॉडल विद फतहपुर सीकरी, श्रीमली, कृष्णा मोहन, (संपा.) रीजन एण्ड आर्किआलजी (दिल्लीः ऐसोसिएशन फॉर दि स्टडी ऑफ हिस्ट्री एण्ड आकिआलॉजी).

टैवर्नियर, जीन बाप्टिस्टे, (1977) *ट्रैवल्स इन इण्डिया,* अनु. वी. बाल, द्वितीय संस्करण संपा. विलियम क्रूक, भाग-1 (नई दिल्लीः ओरिएण्ट बुक्स रिप्रिंट कॉर्पोरेशन).